

नियमसार श्लोक ७४, श्लोक है।

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकायादन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः ।

इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी सिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम् ॥७४॥

श्लोकार्थः—शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे... शुद्ध जीवास्तिकाय लिया है। शुद्ध जीव नहीं लिया। क्योंकि असंख्य प्रदेश लिये न? शुद्ध जीव-अस्ति-काय। असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का पिण्ड। ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे जो सब... भाव आहाहा! शुद्ध जीवास्तिकाय एक ही पदार्थ त्रिकाल लिया है। उससे (अन्य) सब पुद्गलद्रव्य के भाव,... हैं। आहाहा! मैं तो एक शुद्ध जीवास्तिकाय हूँ। मेरे अस्ति, मेरी हयाति, मेरी मौजूदगी शुद्ध अस्ति असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का पिण्ड हूँ। आहाहा!

अन्य... उससे अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव,... सब पुद्गलद्रव्य के भाव । आहाहा ! वे वास्तव में हमारे नहीं हैं... वास्तव में वे हमारी चीज़ नहीं हैं । आहाहा ! अस्ति-नास्ति की है । त्रिकाली जीवास्तिकाय वह अस्ति, वह मैं; उसके अतिरिक्त सब पुद्गल, वह मैं नहीं । आहाहा ! ऐसा जो तत्त्ववेदी... इस प्रकार से जो कोई तत्त्व जाननेवाला, शुद्ध जीवास्तिकाय तत्त्व एक स्वरूप और अन्य सब पुद्गलस्वभाव, ऐसे जो तत्त्व को जाननेवाला.. आहाहा ! तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं,... ऐसी बात स्पष्टरूप से कहता है । अर्थात् उसकी बात स्पष्टरूप से जानता है । कहता है, वह शब्द कथन ऊपर आया । आहाहा !

मैं एक शुद्ध जीवास्तिकाय, अस्ति-तत्त्व हयातिवाला तत्त्व शुद्ध जीवास्तिकाय वह मैं, असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का एकरूप पिण्ड, ऐसे जीवास्तिकाय से अन्य जितने भाव हैं, वे सब पुद्गल के हैं । आहाहा ! उनसे मैं भिन्न हूँ । ऐसे जो तत्त्व का जाननेवाला । वेदी अर्थात् जाननेवाला । स्पष्टरूप से कहते हैं,... स्पष्टरूप से जानता है । कहता है, वह तो कथन है । वह तो समझाने की एक शैली है । 'वक्ति' शब्द रखा है न ? 'इत्थं व्यक्तं वक्ति' ऐसा जो कहता है अर्थात् मैं तो एक शुद्ध जीवास्तिकाय भगवान, पूर्णानन्द का नाथ स्वरूप चैतन्य, मुझसे अन्य सब पुद्गल के भाव हैं । आहाहा ! यहाँ तो क्षायिक भाव को भी पुद्गल में डाल दिया । निमित्त है न ? उसकी अपेक्षा से उसमें डाल दिया । त्रिकाली शुद्ध उपादान... त्रिकाली शुद्ध उपादान । जीव अस्तिकाय समूह असंख्य प्रदेशी.. आहाहा ! वह मैं हूँ, ऐसे तत्त्व का जाननेवाला अथवा तत्त्व को वेदनेवाला... आहाहा ! ऐसा कहता है अथवा ऐसा तत्त्व वेदन करता है । कहता है, वह तो एक शब्द है । ऐसे तत्त्व को अन्तर में वेदनेवाला । है ? वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं । बहुत संक्षिप्त कहा है । आहाहा !

एक ओर भगवान पूर्णानन्द प्रभु, एक ओर पर्यायादि सब भेद पर । मैं तो त्रिकाली जीवास्तिकाय हूँ । ऐसे तत्त्व को वेदन करनेवाला, ऐसे तत्त्व के जाननसहित, ज्ञानसहित, ज्ञेय बनाकर वेदनेवाला, वह जीव... आहाहा ! अति अपूर्व... स्पष्टरूप से जो वेदता है अर्थात् प्रत्यक्षरूप से जो वेदता है । स्पष्टरूप से अर्थात् यह । आहाहा ! इस प्रकार प्रत्यक्ष । भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय स्वरूप अखण्ड, अभेद और दूसरी चीज़ पर । ऐसे तत्त्व को वेदनेवाले, तत्त्व का अनुभव करनेवाले जीव । अति अपूर्व... अनन्त काल में नहीं हुई, ऐसी अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं । ओहोहो ! बहुत संक्षिप्त में कहा । आहाहा ! कुछ क्रिया और कुछ व्यवहार-प्यवहार की बात ही नहीं । आहाहा !

बात की न,.. एक ओर भगवान आत्मा तथा एक ओर सब विकल्प से लेकर, भेद से लेकर (सब पर)। आहाहा! एकरूप अभेदस्वरूप चिदानन्द प्रभु, इस अपेक्षा से सब भेद से लेकर सब पुद्गल हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! सुनना कठिन पड़े। अरे! अनन्त काल से भटकता है। अनन्त-अनन्त काल हुआ, चौरासी के अवतार में, अरे! इसने अपने पूर्णस्वरूप की ओर, निधान की ओर नजर नहीं की। आहाहा! अपना जो निधान जो शुद्ध जीवास्तिकाय। शुद्ध जीवास्ति। अशुद्ध नहीं और अकेला जीव नहीं। काय। आहाहा! शुद्ध जीवास्ति, अस्तिकाय – असंख्यप्रदेशी, ऐसा एकरूप मेरा (स्वरूप) और उसके अतिरिक्त पुद्गल के सब भाव मेरे नहीं। ऐसा जो कोई... आहाहा! तत्त्व को जाननेवाला और तत्त्व को वेदनेवाला। जानना-जानना वह वेदन है।

भाई! प्रत्याख्यान में कहा है न? समयसार में, कि आत्मा में राग का त्याग तो नाममात्र है। क्यों?—कि आत्मा ने जाना कि यह राग है, मैं आत्मा हूँ, ऐसा जाना, यह जाना, उस ज्ञान में उसका ग्रहण नहीं किया और अपने में स्थिर हुआ, इसका नाम पर का त्याग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात है, भाई! आहाहा! एक ओर भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा ने असंख्य प्रदेशी (कहा)। प्रदेश असंख्य और गुण अनन्त, ऐसा जो शुद्ध जीवास्तिकाय, वह अपना स्वरूप है। उसका जो वेदन करता है, जानकर वेदन करता है, वह **अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं**। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! इसमें तो कहीं व्यवहार को... आहाहा!

दो ही बातें ली हैं। एक ओर भगवान शुद्ध जीव अस्ति, सत्ता, अपनी मौजूदगी। शुद्ध-जीव-अस्ति-काय, यह अस्तिकाय, असंख्य प्रदेशी अस्तिकाय। यह सर्वज्ञ सिवाय अन्यत्र होता नहीं। असंख्य प्रदेशी जीव, वह सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने देखा नहीं, किसी ने जाना नहीं। अन्यमत में कोई सर्वज्ञ हुए नहीं और किसी ने जाना नहीं। आहाहा! इस कारण कहते हैं कि शुद्ध-जीव-अस्ति-काय। आहाहा! अशुद्धरहित, पुद्गलरहित अपनी अस्ति असंख्य प्रदेशी ऐसी जो काय, वह काय अपनी। यह काय (जड़ शरीर) अपना नहीं। राग, पुण्य, दया, दान, यह काय अपनी नहीं। वह परपुद्गल की है। आहाहा!

अपना स्वरूप शुद्ध, निर्मल अस्तिवाला। काय असंख्य प्रदेशी समूह। अनन्त गुण का धारक, उसका ज्ञान करके जो वेदता है, उसका ज्ञान करके उसका अनुभव करता है,

वह अत्यन्त अपूर्व ऐसी मुक्ति को प्राप्त करता है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। लोगों को बैठना कठिन पड़े। एक ही बात त्रिकाली ज्ञायकभाव, चैतन्यस्वभाव। असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण। असंख्य प्रदेशी तो क्षेत्र है। आहाहा! द्रव्य जीव है, असंख्य प्रदेशी क्षेत्र है, त्रिकाल रहनेवाला, वह अनादि-अनन्त है और भाव अनन्त गुण का काय, असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का पिण्ड / शरीर है। आत्मा में अनन्त गुण, वह शरीर है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात कहाँ सुने ?

ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से... वेदते हैं, कहते हैं,... कहता है ऐसा शब्द है। आहाहा! ऐसा तत्त्व जाननेवाले। ऐसा तत्त्व जाननेवाले। इस प्रकार से है, ऐसे तत्त्व को जाननेवाले। दूसरे प्रकार से नहीं। आहाहा! जगत को बहुत कठिन पड़ता है। जैसे यहाँ पुद्गल की पर्याय को छोड़ दिया। परवस्तु नहीं, राग नहीं, दया, दान नहीं, पर्याय नहीं। आहाहा! अकेला शुद्धजीवास्तिकायसमूह, शुद्ध पवित्र जीव अस्ति हयातिवाली, असंख्य प्रदेशी काय जिसका स्वरूप है, ऐसे तत्त्व को जो अन्तर सन्मुख होकर जानता है। अन्तर सन्मुख होकर जानता है और जाननेपूर्वक वेदन करता है अर्थात् अनुभव करता है। अतीन्द्रिय आनन्दमय भगवान है, उसके अतीन्द्रिय आनन्द को वेदन करता है। वह अपूर्व-अत्यन्त अपूर्व अनन्त काल में एक समय भी आया नहीं, ऐसी अपूर्व सिद्धि को प्राप्त करता है। आहाहा! भगवान! ऐसी बात है। आहाहा! दुनिया से पूरी अलग लगे (ऐसी बात है)। यह श्लोक तो पद्मप्रभमलधारिदेव का है। अब मूल श्लोक (गाथा) ५१ से।

गाथा-५१-५५

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
 संसयविमोहविबभमविवज्जियं होदि सण्णाणं ॥५१॥
 चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
 अधिगम-भावो णाणं हेयोवादेय-तच्चाणं ॥५२॥
 सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।
 अंतर-हेऊ भणिदा दंसण-मोहस्स खयपहुदी ॥५३॥
 सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं ।
 ववहार-णिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि ॥५४॥
 ववहारणयचरित्ते ववहार-णयस्स होदि तवचरणं ।
 णिच्छय-णय-चारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो ॥५५॥
 विपरीताभिनिवेश-विवर्जित-श्रद्धान-मेव सम्यक्त्वम् ।
 सन्शय-विमोह-विभ्रम-विवर्जितं भवति सज्ज्ञानम् ॥५१॥
 चलमलिन-मगाढत्व-विवर्जित-श्रद्धानमेव सम्यक्त्वम् ।
 अधिगम-भावो ज्ञानं हेयोपादेय-तत्त्वानाम् ॥५२॥
 सम्यक्त्वस्य निमित्तं जिनसूत्रं तस्य ज्ञायकाः पुरुषाः ।
 अन्तर्हेतवो भणिताः दर्शन-मोहस्य क्षय-प्रभृतेः ॥५३॥
 सम्यक्त्वं सज्ज्ञानं विद्यते मोक्षस्य भवति शृणु चरणम् ।
 व्यवहार-निश्चयेन तु तस्माच्चरणं प्रवक्ष्यामि ॥५४॥
 व्यवहारनयचरित्रे व्यवहारनयस्य भवति तपश्चरणम् ।
 निश्चय-नय-चारित्रे तपश्चरणं भवति निश्चयतः ॥५५॥

रत्नत्रयस्वरूपाख्यानमेतत् । भेदोपचाररत्नत्रयमपि तावद् विपरीताभिनिवेश-
विवर्जितश्रद्धानरूपं भगवतां सिद्धिपरम्पराहेतुभूतानां पञ्चपरमेष्ठिनां चलमलिनागाढ-
विवर्जितसमुपजनितनिश्चलभक्तियुक्तत्वमेव । विपरीते हरिहिरण्यगर्भादिप्रणीते पदार्थसार्थे
ह्यभिनिवेशाभाव इत्यर्थः । सज्ज्ञानमपि च सन्शयविमोहविभ्रमविवर्जितमेव । तत्र सन्शयः
तावत् जिनो वा शिवो वा देव इति । विमोहः शाक्यादिप्रोक्ते वस्तुनि निश्चयः । विभ्रमो
ह्यज्ञानत्वमेव । पापक्रियानिवृत्ति-परिणामश्चारित्रम् । इति भेदोपचाररत्नत्रयपरिणतिः ।
तत्र जिनप्रणीतहेयोपादेयतत्त्वपरिच्छित्तिरेव सम्यग्ज्ञानम् । अस्य सम्यक्त्वपरिणामस्य
बाह्यसहकारिकारणं वीतरागसर्वज्ञमुखकमलविनिर्गतसमस्तवस्तुप्रतिपादनसमर्थद्रव्य-
श्रुतमेव तत्त्वज्ञानमिति । ये मुमुक्षवः तेऽप्युचारतः पदार्थनिर्णयहेतुत्वात् अन्तरङ्गहेतव
इत्युक्ताः दर्शनमोहनीयकर्मक्षयप्रभृतेः सकाशादिति । अभेदानुपचाररत्नत्रय-परिणतेर्जीवस्य
टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावनिजपरमतत्त्वश्रद्धानेन, तत्परिच्छित्तिमात्रान्तर्मुख-परमबोधेन,
तद्रूपाविचलस्थितिरूपसहजचारित्रेण अभूतपूर्वः सिद्धपर्यायो भवति । यः परमजिन-
योगीश्वरः प्रथमं पापक्रियानिवृत्तिरूपव्यवहारनयचारित्रे तिष्ठति, तस्य खलु व्यवहारनय-
गोचरतपश्चरणं भवति । सहजनिश्चयनयात्मकपरमस्वभावात्मकपरमात्मनि प्रतपनं तपः ।
स्वस्वरूपाविचलस्थितिरूपं सहजनिश्चयचारित्रं अनेन तपसा भवतीति ।

तथा चोक्तमेकत्वसप्ततौ ह

(अनुष्टुप्)

दर्शनं निश्चयः पुन्सि बोधस्तद्वोध इष्यते ।

स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः ॥

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।

संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है ॥५१॥

चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।

आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है ॥५२॥

जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो ।

वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो ॥५३॥

सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है ।

व्यवहार निश्चय से अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है ॥५४॥

व्यवहारनयचारित्र में व्यवहारनय तप जानिये ।

चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये ॥५५ ॥

गाथार्थः—[विपरीताभिनिवेशविवर्जितश्रद्धानम् एव] विपरीत अभिनिवेश* रहित श्रद्धान ही [सम्यक्त्वम्] सम्यक्त्व है; [संशयविमोहविभ्रमविवर्जितम्] संशय, विमोह और विभ्रम रहित (ज्ञान) वह [संज्ञानम् भवति] सम्यग्ज्ञान है ।

[चलमलिनगाढत्वविवर्जितश्रद्धानम्] चलता, मलिनता और अगाढतारहित श्रद्धान ही [सम्यक्त्वम्] सम्यक्त्व है; [हेयोपादेयतत्त्वानाम्] हेय और उपादेय तत्त्वों को [अधिगमभावः] जाननेरूप भाव वह [ज्ञानम्] (सम्यक्) ज्ञान है ।

[सम्यक्त्वस्य निमित्तं] सम्यक्त्व का निमित्त [जिनसूत्रं] जिनसूत्र है; [तस्य ज्ञायकाः पुरुषाः] जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को [अन्तर्हेतवः] (सम्यक्त्व के) अंतरंग हेतु [भणिताः] कहे हैं, [दर्शनमोहस्य क्षयप्रभृतेः] क्योंकि उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं ।

[शृणु] सुन, [मोक्षस्य] मोक्ष के लिए [सम्यक्त्वं] सम्यक्त्व होता है, [संज्ञानं] सम्यग्ज्ञान [विद्यते] होता है, [चरणम्] चारित्र (भी) [भवति] होता है; [तस्मात्] इसलिए [व्यवहारनिश्चयेन तु] मैं व्यवहार और निश्चय से [चरणं प्रवक्ष्यामि] चारित्र कहूँगा ।

[व्यवहारनयचरित्रे] व्यवहारनय के चारित्र में [व्यवहारनयस्य] व्यवहारनय का [तपश्चरणम्] तपश्चरण [भवति] होता है; [निश्चयनयचारित्रे] निश्चयनय के चारित्र में [निश्चयतः] निश्चय से [तपश्चरणम्] तपश्चरण [भवति] होता है ।

टीकाः—यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है ।

प्रथम, भेदोपचार-रत्नत्रय इस प्रकार है—विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप—ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति उत्पन्न हुआ चलता-मलिनता-अगाढतारहित निश्चल भक्तियुक्तपना, वही सम्यक्त्व है । विष्णुब्रह्मादिकथित विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव ही सम्यक्त्व है—ऐसा अर्थ है । संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है । वहाँ, जिन देव होंगे या शिव देव होंगे (ऐसा शंकारूप), वह संशय है; शाक्यादिकथित वस्तु में निश्चय (अर्थात्

* अभिनिवेश=अभिप्राय; आग्रह ।

बुद्धादि कथित पदार्थ का निर्णय), वह विमोह है; अज्ञानपना (अर्थात् वस्तु क्या है तत्सम्बन्धी अज्ञानपना) ही विभ्रम है। पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम, वह चारित्र है। ऐसी भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है। उसमें, जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है। जो मुमुक्षु हैं उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण (सम्यक्त्वपरिणाम के) अन्तरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा, तद्ज्ञानमात्र (उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप) ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा और उसरूप से (अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से) अविचलरूप से स्थित होनेरूप सहजचारित्र द्वारा अभूतपूर्व* सिद्धपर्याय होती है। जो परमजिनयोगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं, उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है। सहजनिश्चयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन, वह तप है; निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है।

इसी प्रकार एकत्वसप्तति में (श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दिपंच-विंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नाम के अधिकार में १४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(दोहा)

आतम निश्चय दर्श है आत्मबोध ही ज्ञान।

आत्मलीनता चरित - इन त्रय मिल शिवपथ जान ॥

श्लोकार्थः—आत्मा का निश्चय वह दर्शन है, आत्मा का बोध वह ज्ञान है, आत्मा में ही स्थिति वह चारित्र है—ऐसा योग (अर्थात् इन तीनों की एकता) शिवपद का कारण है।

* अभूतपूर्व=पहले कभी न हुआ हो; अपूर्व।

गाथा ५१-५५ पर प्रवचन

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
 संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं ॥५१॥
 चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
 अधिगम-भावो णाणं हेयोवादेय-तच्चाणं ॥५२॥
 सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।
 अंतर-हेऊ भणिदा दंसण-मोहस्स खयपहुदी ॥५३॥
 सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं ।
 ववहार-णिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि ॥५४॥
 ववहारणयचरित्ते ववहार-णयस्स होदि तवचरणं ।
 णिच्छय-णय-चारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो ॥५५॥

नीचे हरिगीत

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।
 संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है ॥५१॥
 चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।
 आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है ॥५२॥
 जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो ।
 वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो ॥५३॥
 सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है ।
 व्यवहार निश्चय से अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है ॥५४॥
 व्यवहारनयचारित्र में व्यवहारनय तप जानिये ।
 चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये ॥५५॥

आहाहा! इसकी टीका दूसरे पृष्ठ पर ।

टीका:—यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। है ? रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, ये तीन रत्नत्रय हैं, ये तीन रत्न हैं। आहाहा! जिस रत्न का मोल देने से मुक्ति मिलती है। यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीन रत्न हैं। आहाहा! दुनिया के हीरा-माणिक के रत्न तो धूल के हैं। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति के दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय, वह मुक्ति का हेतु-कारण है; दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! अब प्रथम व्यवहार कहते हैं।

प्रथम, भेदोपचार... भेद अर्थात् व्यवहार से-उपचार से। टीका है ? है ? **भेदोपचार-व्यवहाररत्नत्रय इस प्रकार है:**—व्यवहाररत्नत्रय, वह तो शुद्ध राग है, परन्तु आता है। निश्चयरत्नत्रय है, वह मोक्ष का मार्ग है। जब तक निश्चय पूर्ण प्राप्त न हो, तब तक अन्दर राग व्यवहार आता है, परन्तु वह राग आदरणीय नहीं है, हेय है। यह कहते हैं। प्रथम, **भेदोपचार-रत्नत्रय इस प्रकार है:**—आहाहा! व्यवहार से, भेद से, उपचार से। उपचार अर्थात् वास्तविक नहीं। ऐसे उपचार से **रत्नत्रय इस प्रकार है:**—आहाहा! **विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप**—विपरीत / उल्टे आग्रहरहित। अभिनिवेश अर्थात् आग्रह, अभिप्राय। विपरीत अभिप्रायरहित... आहाहा! **श्रद्धानरूप—ऐसा जो सिद्धि के...** व्यवहार की बात है, हों! निश्चय की बात नहीं। यह तो व्यवहार समकित की बात है। शुभराग। व्यवहार समकित अर्थात् शुभराग। आहाहा! निश्चय समकित अर्थात् आनन्ददशा का अन्तर निर्विकल्प अनुभव। आहाहा!

भेदोपचार-रत्नत्रय इस प्रकार है—विपरीत अभिनिवेशरहित... समकित की का व्यवहार भी, निश्चय समकित आत्मज्ञान हो, उसे व्यवहार भी ऐसा होता है कि **विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप—ऐसा जो सिद्धि के...** ऐसे जो मुक्ति के परम्पराहेतुभूत... निश्चय तो साक्षात् कारण है। व्यवहार तो छूट जाता है। व्यवहार आता है तो छूट जाता है तो परम्पराहेतु कहा गया है। आहाहा! समझ में आया ? परम्पराहेतुभूत। व्यवहार परम्पराहेतुभूत (कहा है)।

मुमुक्षु : सोनगढ़ मानता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न ? निश्चय हो, उसे यह व्यवहार होता है। उसे यह व्यवहार होता है, यह व्यवहार साक्षात् कारण नहीं है। साक्षात् कारण तो स्व के आश्रय से

अनुभव (हो, वह साक्षात् कारण है)। उसके साथ राग आता है, उसका अभाव होकर मुक्ति होती है तो परम्परा कारण कहा जाता है। आहाहा!

सिद्धि के परम्पराहेतुभूत भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति... भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति। भगवन्त पंच परमेष्ठी। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु – इन पंच परमेष्ठी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। **चलता-मलिनता-अगाढ़तारहित...** आहाहा! इसका अर्थ करेंगे। **चलता-मलिनता-अगाढ़तारहित निश्चल भक्तियुक्तपना,...** निश्चल अर्थात् चलित न हो। निश्चय नहीं। निश्चल – चलित न हो, ऐसी भक्तियुक्तरूप से समकित व्यवहार समकित है। यह निश्चय समकित जिसे है, उसे ऐसा व्यवहार समकित आता है। पूर्ण दशा प्राप्त करने से पहले बीच में ऐसा राग आता है, उस व्यवहार की बात करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

विष्णुब्रह्मादिकथित... विष्णु आदि और ब्रह्म आदि कथित विपरीत पदार्थसमूह... उन्होंने तो सब विपरीत पदार्थ कहे हैं। आहाहा! यहाँ तो भगवन्त सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव ने जो पदार्थ कहे, उनकी चलता-मलिनता-अगाढ़ता रहित व्यवहार श्रद्धा-राग, (उसकी बात है)। आहाहा! ये विष्णु ब्रह्मादि ईश्वरादि के नाम से कथित विपरीत पदार्थसमूह... कोई ईश्वर कर्ता नहीं है, ये ईश्वर कर्ता माननेवाले, विष्णु माननेवाले, ब्रह्मा को (कर्ता) माननेवाले, ये सब विपरीत पदार्थ हैं। आहाहा! उसे तो व्यवहार समकित की श्रद्धा भी नहीं है। आहाहा! ये ब्रह्मा-विष्णु और महेश – शंकर। ब्रह्मा-विष्णु-महेश—शंकर आदि को माने, वह तो विपरीत अभिनिवेश / अभिप्राय है।

विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव ही सम्यक्त्व है... उसका अभिनिवेश अर्थात् अभिप्राय, उनके प्रति अभिप्राय का अभाव ही व्यवहार सम्यक्त्व है। व्यवहार है, राग है। आहाहा! जब तक पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जब तक आत्मा न हो, तब तक निश्चय आत्मा के अवलम्बन से जो मोक्षमार्ग शुरु हुआ, उसके साथ अपूर्ण निश्चय मोक्षमार्ग है, तो साथ में राग आता है। उसे यहाँ चलता-मलिनतारहित, विपरीत श्रद्धारहित व्यवहार समकित कहा गया है। आहा..हा..! **ऐसा अर्थ है।** (विपरीत अभिनिवेश का) **अभाव ही सम्यक्त्व है...** ऐसा है?

अब इसका अर्थ करते हैं। **संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है।** आहाहा! यह अभी व्यवहार की बात चलती है। **संशय,...** जहाँ शंका नहीं, **विमोह...**

नहीं-भ्रमणा नहीं। विभ्रम... नहीं। ऐसा होगा या ऐसा होगा, ऐसा विभ्रम नहीं। संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। यह व्यवहारज्ञान है, यह अभी राग है। आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान है, आत्मा का अनुभव-आनन्द का अनुभव है, उसमें अपूर्ण दशा है, पूर्ण दशा नहीं, उस भूमिका में ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। यह व्यवहार है। अभी व्यवहार सम्यक् लिया। आहाहा! व्यवहार अर्थात् अभी शुभराग। वहाँ, जिन देव होंगे या शिव देव होंगे (ऐसा शंकारूप), वह संशय है;... यह संशय की व्याख्या। सर्वज्ञ भगवान होंगे यह सत्य है या शिव देव शंकरादि, ब्रह्म, विष्णु, शंकर आदि सत्य होंगे? ऐसी शंका को यहाँ संशय कहते हैं। वह संशयरहित हो, उसे निश्चय सम्यग्दर्शनसहित व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं। आहाहा!

शाक्यादिकथित वस्तु में निश्चय... शाक्य अर्थात् बौद्ध। बौद्ध का बहुत प्रचार है न? बौद्धधर्म, वह मिथ्यात्व है। एक क्षणिक को मानता है। त्रिकाल आत्मा को नहीं मानता। वह तो क्षणिक को ही मानता है। शाक्य अर्थात् बौद्ध। (अर्थात् बुद्धादि कथित...) इसके अतिरिक्त अनेक अज्ञानियों द्वारा कथन की हुई, उस वस्तु में निश्चय, उसका नाम विमोह है। विमोह मिथ्यात्व राग है। आहाहा! (अर्थात् बुद्धादि कथित पदार्थ का निर्णय), वह विमोह है;... आहाहा! अज्ञानपना (अर्थात् वस्तु क्या है, तत्सम्बन्धी अज्ञानपना) ही विभ्रम है। अभी तो व्यवहार की बात चलती है, हों! वस्तु कैसी है? ऐसी वस्तु का अज्ञानपना, वस्तुस्थिति की मर्यादा, उसका अज्ञानपना वह विभ्रम है। आहाहा!

पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम, वह चारित्र है। व्यवहार। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, समकृती को निश्चयसहित पापक्रिया से निवृत्तिरूप शुभराग आता है, वह व्यवहारचारित्र है। उसका नाम राग है। आहाहा! वह व्यवहार (तो) निश्चय हो उसे व्यवहार होता है। जिसे आत्मा का अनुभव, आनन्द का अनुभव नहीं, उसे तो यह व्यवहार भी गिनने में नहीं आता। आहाहा! पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम... हिंसा, झूठ, चोरी, विषयरहित पंच महाव्रत के परिणाम, वे चारित्र-राग हैं। पंच महाव्रत के परिणाम, वे राग हैं। मुनि को भी; समकृती को भी जब तक पूर्ण चारित्रदशा न हो, तब बीच में यह राग आये बिना नहीं रहता। आहाहा! परन्तु वह राग हेय है। छोड़नेयोग्य है, जाननेयोग्य है। है, ऐसा जानकर छोड़नेयोग्य है।

छोड़नेयोग्य का अर्थ ऐसा है कि सम्यग्ज्ञान ने जाना, वह दुःख विपरीत है तो उस विपरीत का ग्रहण नहीं और ज्ञान में ज्ञानरूप स्थिरता है, उसका नाम विभ्रम का त्याग कहते हैं। आहाहा! शब्द-शब्द में बहुत सूक्ष्मता, प्रभु! यह तो जिनेश्वर का मार्ग है। वीतराग सर्वज्ञ तीन लोक के नाथ। आहाहा! अनन्त तीर्थकर हुए, वर्तमान में महाविदेह में विराजते हैं, सबका एक ही कथन है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' परमार्थ का पन्थ दो-तीन (नहीं है)। यह भी सही और यह भी सही, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम भी चारित्र है, ऐसी भेद उपचार रत्नत्रयपरिणति है, वह व्यवहार है। भेद अर्थात् व्यवहार, उपचार, वास्तविकता नहीं। उपचार अर्थात् वास्तविकता नहीं।

भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है। वास्तविक रत्नत्रयपरिणति नहीं। **भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है।** आहाहा! **उसमें,...** अब भेदरत्नत्रयपरिणति... जो स्वभाव आत्मा त्रिकाली शुद्ध का अवलम्बन / आश्रय निश्चय है, अनुभव है, आनन्द का अनुभव है, उसके पाप की निवृत्तिरूप परिणाम को व्यवहारचारित्र कहते हैं। आहाहा! **उसमें,...** उसमें अर्थात् व्यवहार में। **जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।** आहाहा! यह भी व्यवहार है। हेय और उपादेय दो आये न? दो आये, इसलिए व्यवहार हुआ। और **उसमें,...** कहा न? व्यवहाररत्नत्रय जो राग कहा, **उसमें, जिनप्रणीत...** तीन लोक के नाथ जिनप्रणीत—वीतराग का कहा हुआ हेय-उपादेय। यह छोड़नेयोग्य है, यह आदरनेयोग्य है, यह भी व्यवहार ज्ञान में जाता है, यह व्यवहार ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

संशय, विमोह और विभ्रमरहित... यह दर्शन और ज्ञान; और पाप की निवृत्तिरूप पंच महाव्रतादि के परिणाम, यह व्यवहारचारित्र है। इन तीन में **हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।** आहाहा! निश्चय सम्यग्ज्ञान तो अन्तर का अनुभव करना, वह है। हेय-उपादेय दो आये न? दो आये, इसलिए व्यवहार हुआ। वह निषेधयोग्य है। यह (निश्चय) ग्रहण करनेयोग्य है। दो आये। इसलिए शब्द लिया कि व्यवहाररत्नत्रय परिणति है उसमें। ऐसा लिया न, भाई? इसलिए **उसमें...** शब्द लिया न? व्यवहाररत्नत्रय परिणति है। व्यवहार कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा (का त्याग), उनका ज्ञान और पाप के निवृत्तिरूप परिणाम चारित्र पंच महाव्रत।

उसमें... आहाहा! **जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान...** सर्वज्ञ भगवान ने त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतरागदेव ने जो हेय कहा, रागादि हेय कहे और स्वभाव को

उपादेय कहा, वह भी व्यवहार में जाता है। व्यवहार में दो आये न? आहाहा! भारी कठिन। ऐसा मार्ग! छोटी उम्र में तो साधारण सीखते थे। दस वर्ष की उम्र से सामायिक और... अभी तो ९१ हुए। ८१ वर्ष पहले की बात है। जैनशाला में पढ़ने जाते थे न, तब सामायिक और सब कण्ठस्थ किया था। दस वर्ष की उम्र में सामायिक, प्रतिक्रमण सब मुख्याग्र-कण्ठस्थ किया था और यह मानते थे कि अपने यह धर्म है और हमें सिखानेवाला भी वहाँ एक 'सोमचन्द भगत' अन्धे थे - उमराला में (थे), वे सिखाते थे। सोमचन्द अन्ध थे और एक हमारे रूपचन्दभाई नाम के भानेज थे। वहाँ पूना में लड़का है। हमारी बहिन का लड़का था। बड़ी उम्र का था। वह सिखाता था, परन्तु ऐसा सब सीखें। यह तो अस्सी वर्ष पहले की बात है। उस समय मानते और मुख्याग्र कण्ठस्थ किया था। सामायिक, प्रतिक्रमण, पाँचों प्रतिक्रमण कण्ठस्थ किये थे। परन्तु वह सब व्यवहार विकल्प है। उसे तो निश्चय भी नहीं है।

यहाँ तो निश्चय आत्मा का भान है, अनुभव है, आनन्द का स्वाद है, उसकी दशा में पूर्णदशा नहीं तो ऐसा राग आये बिना नहीं रहता। उस राग को यहाँ व्यवहाररत्नत्रय की परिणति कहते हैं। आहाहा! अन्दर है या नहीं? **उसमें...** उसमें अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय में। निश्चय में तो हेय-उपादेय ऐसे दो भेद ही नहीं हैं। अकेला त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध जीवास्तिकाय पहले कहा है। आहाहा! कलश में कहा है। शुद्ध जीवास्तिकाय अखण्ड-अभेद है, उसका आश्रय करके निश्चय होता है, उसका नाम निश्चय है। जहाँ पर की अपेक्षा आयी, उसे व्यवहार कहते हैं। आहाहा! अरे! कब सुने? कब विचार करे? कब जँचे? मनुष्यभव चला जाता है। अवतार तो... वर्ष चले जाते हैं। निश्चय से तो जितने दिन और महीने जाते हैं, उतना मृत्यु का समय नक्की-निश्चित है। केवलज्ञान में मृत्यु का समय और अन्दर... निर्णय है कि इस समय में, इस क्षण में यह देह छूटेगी। आहाहा! ये मृत्यु के निकट दिन जाते हैं। मृत्यु के नजदीक जाते हैं और उसमें अधिक, हम कुछ विशेष हुए, ऐसा मानता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि स्व आत्मा भगवान पूर्णानन्द... कहेंगे। पहले कलश में कह गये हैं। विशेष कहेंगे... जिसे अन्दर शुद्ध जीवास्तिकाय, त्रिकाल शुद्ध जीव-अस्ति/मौजूदगी, अनादि-अनन्त सनातन सत्य प्रभु, भगवान केवलज्ञानी ने जो देखा, अनुभव किया और केवलज्ञान हुआ। ऐसे अनन्त केवली और अनन्त जीवों ने देखा। उन्होंने जो

कहा, उसमें भी हेय और उपादेय दो लेना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह किसे? यह व्यवहार, हेय-उपादेय का व्यवहार ज्ञान किसे? आहाहा! जिसे आत्मा चैतन्यमूर्ति शुद्ध जीवास्तिकाय का अनुभव, आनन्द का स्वाद आया हो। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ का अनुभव हुआ हो, ऐसा स्वाश्रय निश्चय हुआ हो, उसे यह व्यवहार पराश्रय व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! इस निश्चय के बिना तो व्यवहार भी नहीं कहते। वह तो व्यवहाराभास है। वह अनन्त बार किया।

अरे! चौरासी लाख के अवतार में दिगम्बर साधु भी अनन्त बार हुआ। दिगम्बर साधु। जैन की वास्तविकता दिगम्बर तो अनादि तत्त्व है। उसका साधु होकर पंच महाव्रत, अट्टाईस मूलगुण, हजारों रनियाँ त्यागकर क्रिया की, परन्तु वह सब बन्ध का कारण है। आहाहा! उससे रहित अन्दर भगवान् अमूर्तिक, शुभराग की भी जिसने अपेक्षा नहीं, ऐसा निर्मलानन्द का नाथ, प्रभु, जीवास्तिकाय का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द की शान्ति (प्रगट हो), उसे ऐसा व्यवहार होता है। उसका व्यवहार ऐसा होता है। जिसे निश्चय नहीं, उसे तो व्यवहार भी कहने में नहीं आता। आहाहा!

यहाँ आया? उसमें... आहाहा! जिनप्रणीत... वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव तीर्थकरदेव ने कहे हुए तत्त्व, उन हेय-उपादेय तत्त्व का ज्ञान है वह सम्यग्ज्ञान व्यवहार है। आहाहा! पहले भी आ गया है। हिम्मतभाई! बाह्यतत्त्व, परमात्मतत्त्व, पहले आ गया है। कौन सी गाथा? पाँचवीं? देखो! पृष्ठ १२ - तत्त्व बहिःतत्त्व और अन्तःतत्त्वरूप परमात्मतत्त्व ऐसे (दो) भेदोंवाले... जीव श्रद्धा को व्यवहार समकित कहते हैं। है? बहिःतत्त्व रागादि, अन्तःतत्त्व जीवादि परमात्मतत्त्व... आहाहा! ऐसे (दो) भेदोंवाले हैं अथवा जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष, ऐसे भेदों के कारण सात प्रकार के हैं। उनका (-आप्त का, आगम का और तत्त्व का) सम्यक् श्रद्धान, सो व्यवहारसाधन है। है? व्यवहार है, राग है। आहाहा!

क्या कहा? कि अन्तःतत्त्वरूप परमात्मतत्त्व... उसके साथ बहिःतत्त्व की श्रद्धा को जोड़ना, तो दो की श्रद्धा, वह व्यवहार समकित है। है? और जीव-अजीव आदि नौ तत्त्व की श्रद्धा भी व्यवहारतत्त्व है। है? आहाहा! तत्त्व बहिःतत्त्व और अन्तःतत्त्वरूप परमात्मतत्त्व... निश्चय और बहिःतत्त्व व्यवहार, ऐसे (दो) भेदोंवाले हैं अथवा जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष, ऐसे भेदों के कारण... दो प्रकार।

बहिःतत्त्व और अन्तःतत्त्वरूप परमात्मतत्त्व... की श्रद्धा और इन नौ तत्त्व की श्रद्धा। उनका (-आप्त का, आगम का और तत्त्व का) सम्यक् श्रद्धान, सो व्यवहारसम्यक्त्व है। आहाहा! परमात्म (तत्त्व) तो अन्दर आया और साथ में बाह्यतत्त्व भी आया। इसलिए बाह्य जहाँ आया, इसलिए दो तत्त्व हुए, दो हुए, इसलिए व्यवहार हो गया। आहाहा! सूक्ष्म बात है प्रभु!

यह यहाँ कहा। उसमें... व्यवहार जो चलता है, जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। यह व्यवहार है। यह व्यवहार कहा। वहाँ जो व्यवहार कहा, वह व्यवहार है। आहाहा! व्यवहार अर्थात् राग है, वह धर्म नहीं। जहाँ निश्चय आत्मा के आनन्द के अनुभव का वेदन हुआ, वहाँ अपूर्ण है तो राग आता है। ये सात तत्त्व और अन्तः तत्त्व और बहिःतत्त्व की श्रद्धा अथवा इन जीव आदि की श्रद्धा, (वह होती है)। आहाहा! अथवा हेय उपादेय का ज्ञान, वह व्यवहार है। आहाहा! गजब है!

यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है। आहाहा! भगवान के पास गये थे। वर्तमान में समवसरण में त्रिलोकनाथ महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, वहाँ गये थे, आठ दिन वहाँ रहे थे। आहाहा! और भगवान की प्ररूपणा तो सबेरे, दोपहर, शाम तीन बार छह-छह घड़ी होती है। फिर तो प्ररूपणा नहीं होती। व्याख्यान बन्द हो, ऐसे समय में दूसरे जो वीतरागी मुनि, सन्त थे। सच्चे दिगम्बर सन्त थे, उनके साथ चर्चा करके बहुत समाधान किया। वहाँ से आकर ये शास्त्र बनाया। उसमें भी यह शास्त्र तो, समयसार, प्रवचनसार, ये सब शास्त्र बनाये वे तो साधारण तत्त्व को समझाने के लिये, परन्तु यह शास्त्र तो मैंने मेरे आत्मा के लिये बनाया है। मेरे आत्मा के हित के लिये बनाया है। आहाहा! गजब बात! कठिन पड़े। कहो रजनीभाई! पुस्तक है या नहीं? घर पर रखी होगी, पढ़ी नहीं होगी। पिताजी ने तो पढ़ी थी। इनने पढ़ी थी। बहिनश्री के वचनामृत। भूपतभाई ने बहिनश्री के वचनामृत चार बार पढ़ी थी। गुजर गये। करोड़ों रुपये हैं। धूल भी साथ में नहीं आया कुछ। आहाहा! यहाँ आते थे, रहते थे। चले गये। ओहोहो!

यहाँ कहते हैं प्रभु! तू एक बार सुन तो सही। परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की आज्ञा में क्या चलता है? कि एक तो जिसे आत्मा का अनुभव, आनन्द... बाह्य और अभ्यन्तर तत्त्व का भेद छोड़कर अन्तर तत्त्व का अनुभव अन्दर निर्विकल्प आनन्द (प्रगट हुआ), आनन्द में समकित होता है, उसे यहाँ पूर्ण दशा नहीं है, वहाँ ऐसा व्यवहार आता

है। आहाहा! जहाँ निश्चय आत्मज्ञान और आनन्द नहीं, वहाँ व्यवहार, व्यवहार कहने में नहीं आता। एक (अंक) के बिना शून्य को गिनती में नहीं लेते। एक के बाद शून्य हो तो फिर दस गिना जाता है, परन्तु अकेले शून्य को गिनने में नहीं आता। इसी प्रकार भगवान् आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, नाथ! उसके अनुभव बिना अकेला व्यवहार-व्यवहार वह एक के बिना शून्य है परन्तु निश्चय हो और पूर्ण वीतराग न हो तो उसमें बीच में ऐसा व्यवहार आता है। वह राग पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! वह व्यवहार भी पुण्यबन्ध का कारण राग है। आहाहा! अरे रे! चौरासी के अवतार में अनन्त काल गया। आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु! अभेद। बहिःतत्त्व और अन्तःतत्त्व ऐसे दो भेद भी जिसमें नहीं। आहाहा! दो भेद को लक्ष्य में लेता है, तो व्यवहार और विकल्प-राग आ जाता है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। व्यवहार। आहाहा! अब इस सम्यक्त्वपरिणाम का... अब सम्यक्त्व की बात की। समकिति जीव है, आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है, आनन्द का अनुभव हुआ है, अतीन्द्रिय आत्मा में अनन्त गुण हैं। प्रभु आत्मा भगवन्त में अनन्त गुण भरे हैं। उन अनन्त गुण की अन्तर सन्मुख होकर, अन्तर अभिमुख होकर अनुभव हुआ है, ऐसे समकिति जीव को... ये समकित के परिणाम कहो, ये समकित के परिणाम हैं। समकित कोई गुण नहीं है। आहाहा! यह त्रिकाली भगवान् आत्मा, वह द्रव्य है और त्रिकाली श्रद्धा, ज्ञान आदि गुण हैं, वे ध्रुव हैं और यह समकित तथा चारित्र आदि मोक्ष का मार्ग, वह परिणाम है, वह पर्याय है। आहाहा!

इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण... देखो जहाँ समकित के परिणाम हुए, आत्मदर्शन हुआ, आत्मा आनन्द का साक्षात्कार हुआ... आहाहा! उसे सम्यक्त्व परिणाम हुआ, समकित हुआ, अनन्त काल में नहीं हुआ ऐसा सम्यग्दर्शन, आत्मा के आनन्द के आश्रय से हुआ, ऐसे सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण... उसका बाह्य सहकारी कारण कौन? अन्तर तो अपना स्वरूप। बाह्य सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ... आहाहा!

इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण... सहकारी-साथ में रहनेवाला। निश्चय के साथ रहनेवाला, उसका नाम सहकारी। सहकारी अर्थात् साथ में रहनेवाला। आहाहा! वह सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु

के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है। सहकारी कारण वह भगवान का तत्त्वज्ञान ही है। सहकारी अर्थात् व्यवहार... आहाहा! समकित तो निश्चय आत्मा के आश्रय से है, तो बाह्य सहकारी कारण तत्त्वज्ञान / भगवान के वचन का ज्ञान है। है? आहाहा! ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है। आहाहा! दूसरे बाह्य निमित्त नहीं।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)